नईदुनिया

डॉ. विश्वास तिवारी

चुनावी हार के बाद तार-तार होती ममता की तृणमूल कांग्रेस

कांग्रेस की स्थापना से लेकर अब तक 63 नेताओं ने इससे अलग होकर अपनी नई पार्टियां बनाई हैं। इनमें से 13 पार्टियों ने अब तक किसी न किसी राज्य में अपना वजूद बचाए रखा है और केवल 8 पार्टियां ही किसी के साथ गठबंधन करके सत्ता के द्वार तक पहुंची है। ममता बैनर्जी ने भी 1998 में कांग्रेस को छोड़कर अपना नया दल बनाया था। इसमें वो काफी सफल भी रही, परंतु हाल में मिली पराजय के बाद वो अपना रहा सहा वजूद बचाने के लिए अपनी मूल पार्टी में लौटने के ललायित दिख रही है। कांग्रेस से निकली हुई हर पार्टी एक क्षेत्रीय पार्टी ही रही है।

लगातार 15 वर्षों तक शासन के बाद ममता बैनर्जी की करारी हार से ज्यादा हैरानी वाली बात है उनकी तृणमूल कांग्रेस में बिखराव। 2021 के विधानसभा चुनाव में 294 में से 215 और फिर लोकसभा 2024 में 42 में से 29 सीटों पर विजय प्राप्त करने के बाद ऐसा किसी ने नहीं सोचा था कि इस बार वो केवल 80 सीटों पर सिमट जाएगी। 4 मई का चुनाव परिणाम आने के बाद से ही तृणमूल में बड़ी टूट की आशंका जताई जा रही थी। उनके 58 विधायक बगावत करके पार्टी छोड़ चुके है और लगभग 20 लोकसभा सदस्यों ने नेशनलिस्ट सिटिजन्स पार्टी में विलय की घोषणा की है और साथ ही एनडीए को समर्थन देने की भी घोषणा की है। इस समर्थन के बाद यह एनडीए में भाजपा के बाद सबसे बड़ी घटक दल, बन जाएगा और उम्मीद भी करेगा कि अगले केंद्रीय विस्तार में इनकी पार्टी से भी एक या दो केंद्रीय मंत्री बन जाएं। पार्टी के राज्यसभा सदस्य भी एक एक करके इस्तीफा दे रहे है। पार्टी छोड़ने का यह इकलौता मामला नहीं है। अरविंद केजरीवाल के खास माने जाने वाले राघव चड्ढा ने भी सात राज्यसभा सदस्यों के साथ अपना एक अलग गुट बना लिया है। ऐसे ही तमिलनाडु में भी हार के बाद अन्नाद्रमुक को टूट का सामना करना पड़ रहा है। उनके 25 में से 21 विधायक मुख्यमंत्री विजय के नेतृत्व में अपनी आस्था साबित कर चुके है। महाराष्ट्र में शिवसेना और राकंपा भी ऐसी हालात से गुजर चुकी है। अधिकृत चुनाव चिन्ह भी उनकी मूल पार्टी से छिन चुके है। बाला साहब ठाकरे की पार्टी हमेशा मराठी मानुष का समर्थन और कांग्रेस के विरोध की वैचारिकता पर ही बनी थी। जब सत्ता पाने के लिए उद्धाव ठाकरे ने कांग्रेस के साथ हाथ मिला लिया तो यह उनके कार्यकर्ताओ और वरिष्ठ नेताओं को हजम नहीं हुआ और वह अपना अलग बनाकर दल बनाकर भाजपा से जा मिले। ऐसे ही शरद पवार ने अपनी कांग्रेस से अलग होकर अपने भतीजे अजीत पंवार के सहयोग से अपनी पार्टी राकपा बनाई थी। जब उन्होंने अपने उत्तराधिकारी के रूप में अजीत पंवार की जगह अपनी बेटी सुप्रीया फुले को आगे किया तो अजीत पंवार ने भी अपना अलग दल बनाकर भाजपा से हाथ मिला लिया। ममता भले ही बगावत का जिम्मेदार भाजपा को बता रही हो परंतु असल में उनके नेता और कार्यकर्ता उनके राज करने की शैली से नाराज थे। ममता की मनमानी, मुस्लिमों के लिए उनका विशेष प्रेम और ऊपर से अभिषेक बैनर्जी की दादागिरी और गुड़ागर्दी, इन कारणों ने आग में घी डालने का काम किया। अगर ममता चुनाव जीत जाती तो सरकारी मशीनरी और पद का लालच देकर इस विद्रोह को दबा सकती थी, लेकिन इतनी करारी हार के बाद इस दबे हुए गुस्से के तूफान को दबाना मुश्किल था।

कांग्रेस की स्थापना से लेकर अब तक 63 नेताओं ने इससे अलग होकर अपनी नई पार्टियां बनाई है। इनमें से 13 पार्टियों ने अब तक किसी न किसी राज्य में अपना वजूद बचाए रखा है और केवल 8 पार्टियां ही किसी के साथ गठबंधन करके सत्ता के द्वार तक पहुंची है। ममता बैनर्जी ने भी 1998 में कांग्रेस को छोड़कर अपना नया दल बनाया था। इसमें वो काफी सफल भी रही, परंतु हाल में मिली पराजय के बाद वो अपना रहा सहा वजूद बचाने के लिए अपनी मूल पार्टी में लौटने के ललायित दिख रही है। कांग्रेस से निकली हुई हर पार्टी एक क्षेत्रीय पार्टी ही रही है। ये दल अपने मुखिया की महत्वांकाक्षाओं की पूर्ति के लिए अपने प्रदेश की अस्मिता और जनआकाक्षाओं को महत्व देते हुए कार्यकर्ताओं की फौज तैयार करते है। इन दलों का कोई वैचारिक आधार नहीं होता है। इन दलों में एक नेता का चमत्कार ही उन्हें सफलता दिलाता है। जब उस व्यक्ति का चमत्कार खत्म होने लगता है तो ऐसे दल अर्श से फर्श पर आ जाते है। तब ऐसे दल के कार्यकर्ता सत्ता के मोह में अपनी पार्टी छोड़ने में जरा सी भी हिचकिचाहट नहीं दिखाते है। मजे की बात तो यह है कि इस बिखराव की खबर सार्वजनिक उसी दिन हुई जिस दिन पार्टी की मुखिया ममता बैनर्जी 'इंडिया ब्लाक' की बैठक में हिस्सा लेने दिल्ली में थी। तृणमूल की टूट सिर्फ एक राजनीतिक दल में टूट या दलबदल की घटना भर नहीं है, बल्कि यह आजकल की राजनीतिक संस्कृति का आईना भी है जो यह दिखाता है कि अब हमारे जनप्रतिनिधि सिद्धांतों या मूल्यों से नहीं, सिर्फ सत्ता से संचालित होते है। वो सत्ता चाहे राज्य की हो या केंद्र की हो। यह दोष केवल एक दल या पार्टी का नहीं है, जिसे जब और जहां मौका मिला उसने राजनीतिक नैतिकता को ताक पर रखकर सत्ता में मौजूद पार्टी से हाथ मिला लिया।

आजकल हर पार्टी में आतंरिक लोकतंत्र समाप्त हो चुका है। राष्ट्रीय दलों में आलाकमान संस्कृति ने अपनी जड़े जमा ली है, वहीं क्षेत्रीय दल किसी जागीर की तरह चलाए जा रहे है। बहुमत के आधार पर नहीं अब फैसले पार्टी प्रमुख की पसंद से लिए जाते है। ऐसा ही हमने आम आदमी पार्टी में देखा और अब तृणमूल कांग्रेस पार्टी में भी देखा। अपने स्वर्णिम काल में इन दलों ने अपने प्रतिबद्ध कार्यकर्ताओं की सलाह को कोई तहरीज नहीं दी जिससे उनका अपनी पार्टी से मोह भंग होने लगा और वह अपने को उपेक्षित समझने लगे।

इस मामले में भाजपा की कार्यशैली थोड़ी भिन्न है। वह अक्सर अपने जमीन से जुड़े और ईमानदारी से पार्टी की सेवा कर रहे कार्यकर्ताओं को बड़े पद से नवाज देती हो, चाहे वो मुख्यमंत्री का पद हो या राज्यसभा के लिए सीट हो। निष्ठाएं बदलने की एक और बढ़ी वजह है कि आजकल चुनाव लड़ना बहुत महंगा होता जा रहा है, इसलिए कोई भी नेता केवल अपने दम पर चुनाव नहीं लड़ सकता। एक सामान्य व्यक्ति तभी चुनाव जीत सकता है जब उसका राजनीतिक दल बहुत मजबूत होता है और उसका साथ देता है। सत्ता जाते ही सत्ताधारी दल में शामिल होना अब सामान्य बात हो गई है। इसका एक कारण है कमजोर दल बदल कानून। अब तक उनको अपनी पार्टी में शामिल करने वाला दल भी उनके द्वारा आरोपों और अपशब्दों को भुला देता है। इस विषय पर समस्त राजनीतिक दल के अलावा देश की जनता को भी सोचने की जरूरत है क्योंकि जिस जनप्रतिनिधि में नैतिकता ही नहीं होगी, उसके द्वारा हम एक परिपक्व लोकतंत्र की कल्पना नहीं कर सकते है।

धरती का हीटिंग सिस्टम ठंडा पड़ रहा है

अटलांटिक का दिल धीमा, दुनिया के लिए साइलेंट सुनामी

अटलांटिक महासागर में बहने वाली वह विशाल समुद्री धारा, जो यूरोप को गर्म रखती है और दुनिया के मौसम को संतुलित करती है, पिछले कई दशकों से धीमी पड़ रही है। इसे अटलांटिक मेरिडियोनल ओवरटर्निंग सर्कुलेशन (एएमओसी) या पृथ्वी की समुद्री कन्वेयर बेल्ट कहा जाता है। वैज्ञानिकों का मानना है कि यह धारा अपने ऐतिहासिक न्यूनतम स्तर के करीब पहुंच चुकी है। सबसे बड़ा खतरा यह नहीं कि यह आज ही रुक जाएगी, बल्कि यह है कि यह एक ऐसे टिपिंग पॉइंट के करीब पहुंच रही है, जहां से इसका संतुलन अचानक बिगड़ सकता है। यदि ऐसा हुआ तो अटलांटिक का दिल थम जाएगा और पूरी दुनिया का मौसम तंत्र वेंटिलेटर पर पहुंच सकता है।

एएमओसी को पृथ्वी के रक्त संचार की तरह समझा जा सकता है। अटलांटिक के उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों से गर्म पानी उत्तर की ओर बहता है, जिसे गल्फ स्ट्रीम कहा जाता है। ग्रीनलैंड और आइसलैंड के पास पहुंचकर यह पानी ठंडा और भारी होकर समुद्र की गहराइयों में डूब जाता है। यही गहरा पानी दक्षिण की ओर बहते हुए पूरे महासागर में ऑक्सीजन और पोषक तत्वों का वितरण करता है। इसी प्रक्रिया के कारण यूरोप अपेक्षाकृत गर्म रहता है और वैश्विक जलवायु संतुलित बनी रहती है। लेकिन अब यही प्राकृतिक कन्वेयर बेल्ट कमजोर पड़ रही है।

पिछले एक हजार वर्षों के आंकड़े बताते हैं कि एएमओसी अपनी सबसे कमजोर स्थिति में है। ग्रीनलैंड की बर्फ तेजी से पिघल रही है और उसका मीठा पानी समुद्र में मिल रहा है। मीठा पानी नमकीन पानी की तुलना में हल्का होता है, इसलिए वह आसानी से गहराई में नहीं डूबता। यदि पानी का यह डूबने वाला चक्र बाधित हुआ तो पूरी ओवरटर्निंग प्रक्रिया प्रभावित होगी। वैज्ञानिक इसे पूर्ण बंद होने के बजाय 'स्लोडाउन' कहते हैं, लेकिन जलवायु विज्ञान में यही धीमापन बड़े संकट की शुरुआत माना जाता है। पिछले दो दशकों में इसकी गति लगभग 15 प्रतिशत तक घट चुकी है और अनुमान है कि इस सदी के अंत तक इसमें 34 से 45 प्रतिशत तक की कमी आ सकती है।

यदि एएमओसी गंभीर रूप से कमजोर हुआ तो इसका असर पूरी दुनिया पर एक साथ दिखाई देगा। यूरोप में औसत तापमान 3 से 5 डिग्री सेल्सियस तक गिर सकता है। ब्रिटेन, स्कैंडिनेविया और उत्तरी यूरोप में लंबी और कठोर सर्दियां लौट सकती हैं, जिससे कृषि और ऊर्जा व्यवस्था पर भारी दबाव पड़ेगा। ग्लोबल वार्मिंग के दौर में यूरोप का अत्यधिक ठंडा होना एक जलवायु विरोधाभास होगा, लेकिन एएमओसी के कमजोर पड़ने से यह संभव है। भारत के लिए भी यह खतरा कम गंभीर नहीं है। एएमओसी और भारतीय मानसून का गहरा संबंध माना जाता है। अटलांटिक के ठंडा होने से मानसूनी हवाओं का स्वरूप बदल सकता है। इसके परिणामस्वरूप कहीं अत्यधिक वर्षा और कहीं भीषण सूखा देखने को मिल सकता है। बारिश के दिनों की संख्या घट सकती है, लेकिन जब वर्षा होगी तो वह क्लाउड बर्स्ट जैसी तीव्र हो सकती है।

कृषि प्रधान भारत के लिए यह खाद्य सुरक्षा और जल प्रबंधन दोनों के लिए गंभीर चुनौती होगी। समुद्र का बढ़ता स्तर और शक्तिशाली तूफान भी इस बदलाव के संभावित परिणाम हैं। उत्तरी अटलांटिक क्षेत्र में समुद्र का स्तर तेजी से बढ़ सकता है, जिससे तटीय शहरों पर खतरा बढ़ेगा। वहीं दक्षिणी गोलार्ध में अतिरिक्त गर्मी फंसने से ब्राजील, अर्जेंटीना और दक्षिण अफ्रीका जैसे देशों में हीटवेव अधिक तीव्र हो सकती है तथा अमेजन के वर्षावनों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

वैज्ञानिकों की सबसे बड़ी चिंता टिपिंग पॉइंट को लेकर है। यदि एएमओसी एक निश्चित सीमा से अधिक कमजोर हो गया तो उसका स्वाभाविक रूप से पूर्व स्थिति में लौटना संभव नहीं होगा। पृथ्वी के इतिहास में लगभग 12 हजार वर्ष पहले यंगर ड्रायस काल में ऐसा परिवर्तन देखा गया था, जब यूरोप का तापमान कुछ ही दशकों में लगभग 10 डिग्री तक गिर गया था। आज मानवजनित कार्बन उत्सर्जन और ग्रीनलैंड की पिघलती बर्फ उसी प्रकार की परिस्थितियां पैदा कर रहे हैं।

इस संकट के प्रमुख कारण ग्लोबल वार्मिंग और ग्रीनलैंड की बर्फ का तेजी से पिघलना हैं। हर वर्ष अरबों टन मीठा पानी अटलांटिक में मिल रहा है, जिससे समुद्री संतुलन बिगड़ रहा है। इसलिए कार्बन उत्सर्जन में कमी, स्वच्छ ऊर्जा की ओर तेज बदलाव और वैश्विक जलवायु प्रतिबद्धताओं का पालन अब विकल्प नहीं, बल्कि आवश्यकता बन चुका है। भारत सहित सभी देशों को बदलते मानसून, बाढ़, सूखा और तटीय खतरों से निपटने के लिए अभी से तैयारी करनी होगी। एएमओसी का संकट दिखाई नहीं देता, इसलिए वह और अधिक खतरनाक है। जब तक इसके दुष्परिणाम स्पष्ट रूप से सामने आएंगे, तब तक बहुत देर हो चुकी होगी। हर टन कार्बन डाइऑक्साइड और हर पिघलता ग्लेशियर अटलांटिक के इस प्राकृतिक इंजन को कमजोर कर रहा है। अब सवाल विज्ञान का नहीं, बल्कि वैश्विक इच्छाशक्ति का है। यदि दुनिया समय रहते नहीं चेती तो अटलांटिक का धीमा पड़ता दिल केवल समुद्री धारा नहीं, बल्कि मानव सभ्यता की स्थिरता को भी डगमगा सकता है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

20% इथेनॉल ब्लेंडिंग : किसान की जेब से तेल आयात तक

भारत का ग्रीन ईंधन मिशन कैसे बदलेगा खेल

भारत के पेट्रोल पंप अब हरित क्रांति का दूसरा अध्याय लिख रहे हैं। केंद्र सरकार ने 2025 तक पेट्रोल में 20 प्रतिशत इथेनॉल ब्लेंडिंग यानी श्व20 का लक्ष्य तय किया है। कभी 5 प्रतिशत से शुरू हुआ यह सफर अब 20 प्रतिशत तक पहुंच चुका है और आगे 30 प्रतिशत तक जाने की तैयारी है। यह केवल पेट्रोल में अल्कोहल मिलाने की योजना नहीं, बल्कि ऊर्जा सुरक्षा, किसानों की आय और पर्यावरण संरक्षण का त्रिवेणी संगम है। अनुमान है कि 20 प्रतिशत ब्लेंडिंग से देश को एक करोड़ टन कच्चे तेल की बचत होगी और लगभग 30 हजार करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा बचेगी। हालांकि हर बड़ी क्रांति की तरह इसके सामने भी कई चुनौतियां हैं। इथेनॉल मिशन भारत के लिए वरदान बनेगा या बोझ, यह उसके प्रभावी क्रियान्वयन पर निर्भर करेगा।

इथेनॉल एक जैव ईंधन है, जो गन्ना, मक्का, चावल, गेहूं और खराब अनाज से तैयार किया जाता है। इसे पेट्रोल में मिलाकर ईंधन के रूप में उपयोग किया जाता है। एक लीटर इथेनॉल में पेट्रोल की तुलना में लगभग 35 प्रतिशत कम ऊर्जा होती है, लेकिन यह अपेक्षाकृत स्वच्छ ईंधन है और प्रदूषण कम करता है। भारत दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा गन्ना उत्पादक देश है। पहले अतिरिक्त गन्ना और चीनी उत्पादन किसानों और चीनी मिलों के लिए समस्या बन जाता था, लेकिन इथेनॉल ब्लेंडिंग ने इस अधिशेष को नई आर्थिक ताकत में बदल दिया है। अब गन्ना केवल चीनी ही नहीं, बल्कि ऊर्जा का भी स्रोत बन गया है।

इस मिशन का सबसे बड़ा लाभ किसानों को मिल सकता है। चीनी मिलें अब चीनी के साथ इथेनॉल भी बेच रही हैं, जिससे उनकी आय बढ़ी है और किसानों के बकाया भुगतान में कमी आई है। मक्का और चावल आधारित

इथेनॉल उत्पादन से अन्य राज्यों के किसान भी इस प्रक्रिया से जुड़ रहे हैं। गोदामों में पड़े अतिरिक्त अनाज का उपयोग अब ऊर्जा उत्पादन में हो रहा है। सरकार का लक्ष्य है कि आने वाले वर्षों में इथेनॉल क्षेत्र किसानों की आय में उल्लेखनीय वृद्धि का माध्यम बने।

भारत अपनी तेल आवश्यकता का लगभग 85 प्रतिशत आयात करता है। ऐसे में इथेनॉल ब्लेंडिंग विदेशी मुद्रा बचाने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है। यदि पेट्रोल में इथेनॉल की हिस्सेदारी बढ़ती है तो कच्चे तेल के आयात में कमी आएगी, जिससे आयात बिल घटेगा और अर्थव्यवस्था को मजबूती मिलेगी। इसके साथ ही कार्बन मोनोऑक्साइड, हाइड्रोकार्बन और सूक्ष्म कणों का उत्सर्जन भी कम होगा। स्वच्छ ईंधन के रूप में इथेनॉल जलवायु परिवर्तन से लड़ने और नेट जीरो लक्ष्य की दिशा में भी महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

इथेनॉल मिशन ने औद्योगिक क्षेत्र में भी नई संभावनाएं पैदा की हैं। देश में डिस्टिलरी क्षमता तेजी से बढ़ी है और नई इकाइयों की स्थापना से ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर सृजित हो रहे हैं। किसान अब केवल खाद्यान्न उत्पादक नहीं, बल्कि ऊर्जा आपूर्ति श्रृंखला का भी महत्वपूर्ण हिस्सा बनता जा रहा है।

हालांकि इस मिशन के सामने कई चुनौतियां भी हैं। देश में बड़ी संख्या में पुरानी गाड़ियां हैं, जिनके इंजन श्व20 ईंधन के लिए पूरी तरह उपयुक्त नहीं हैं। इससे माइलेज में कमी और कुछ तकनीकी समस्याएं आ सकती हैं। दूसरी चुनौती फूड बनाम फ्यूल की है। यदि अधिक मात्रा में खाद्यान्न इथेनॉल उत्पादन में इस्तेमाल होगा तो खाद्य सुरक्षा पर असर पड़ सकता है। इसलिए गैर-खाद्य जैव अवशेषों से इथेनॉल उत्पादन को बढ़ावा देना आवश्यक है।

पानी की उपलब्धता भी एक गंभीर चिंता है। गन्ना अत्यधिक जल खपत वाली फसल है और सूखाग्रस्त क्षेत्रों में इसका विस्तार जल संकट को बढ़ा सकता है। इसलिए मक्का, ज्वार और अन्य वैकल्पिक फसलों को बढ़ावा देने के साथ सूक्ष्म सिंचाई तकनीकों को प्रोत्साहित करना जरूरी होगा। इसके अलावा इथेनॉल के भंडारण और परिवहन के लिए बड़े निवेश की आवश्यकता है, क्योंकि इसके लिए विशेष अवसंरचना विकसित करनी होगी।

उपभोक्ताओं के बीच माइलेज को लेकर भी आशंकाएं हैं। यदि प्रति लीटर दूरी कम दिखाई देती है तो लोगों में असंतोष पैदा हो सकता है। इसलिए सरकार और वाहन कंपनियों को यह स्पष्ट करना होगा कि भले ही माइलेज थोड़ा घटे, लेकिन प्रति किलोमीटर लागत और प्रदूषण दोनों में कमी आती है।

20 प्रतिशत इथेनॉल ब्लेंडिंग केवल ऊर्जा नीति नहीं, बल्कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था और आत्मनिर्भर भारत की नई दिशा है। चुनौतियां मौजूद हैं, लेकिन चरणबद्ध विस्तार, दूसरी पीढ़ी के इथेनॉल, जल संरक्षण और तकनीकी सुधारों के जरिए उनका समाधान संभव है। यह पहल किसान, अर्थव्यवस्था और पर्यावरण तीनों के लिए लाभकारी साबित हो सकती है। इथेनॉल ने यह विश्वास जगाया है कि भारत का भविष्य केवल जमीन के नीचे छिपे तेल में नहीं, बल्कि जमीन पर उगने वाली फसलों में भी बसता है और यही इस मिशन की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

स्विस बैंक का ब्लैक मनी मिथक टूटा

भारतीय जमा 8% घटी - पारदर्शिता की जीत या पूंजी का पलायन?

स्विट्जरलैंड के बैंकों को लेकर भारत में दशकों से एक धारणा रही है कि काला धन वहीं छिपा है। लेकिन 2025 के ताजा आंकड़े इस मिथक पर सवाल खड़े करते हैं। स्विस नेशनल बैंक के अनुसार, 2025 में स्विस बैंकों में भारतीयों से जुड़ी कुल जमा राशि 8 प्रतिशत घटकर 36,793 करोड़ रुपये रह गई है। यानी एक वर्ष में लगभग 6,000 करोड़ रुपये की कमी आई है। यह गिरावट किसी एक साल की घटना नहीं, बल्कि पिछले कुछ वर्षों से जारी रुझान का हिस्सा है। ऐसे में सवाल उठता है कि क्या भारत की पारदर्शिता मुहिम सफल हो रही है या फिर यह पूंजी किसी दूसरे टैक्स हेवन की ओर चली गई है।

आंकड़े बताते हैं कि 2024 की तुलना में 2025 में भारतीय जमा में 8 प्रतिशत की कमी दर्ज हुई है। कुल राशि में लगभग 6,000 करोड़ रुपये सीधे खातों में जमा हैं, जबकि शेष धनराशि कंपनियों, ट्रस्टों या अन्य माध्यमों से रखी गई है। वैश्विक रैंकिंग में भारत स्विस बैंकों में विदेशी धन रखने वाले देशों की सूची में 46वें स्थान पर है। दिलचस्प यह है कि पाकिस्तान और बांग्लादेश की जमा राशि में वृद्धि दर्ज की गई है। एक समय स्विस बैंकों में भारतीय धन को लेकर जो अनुमान लगाए जाते थे, वे अब मौजूदा आंकड़ों से मेल नहीं खाते।

विशेषज्ञ इस गिरावट के पीछे तीन प्रमुख कारण मानते हैं। पहला, 2018 से भारत और स्विट्जरलैंड के बीच शुरू हुई ऑटोमैटिक एक्सचेंज ऑफ इन्फॉर्मेशन व्यवस्था। इसके तहत स्विस बैंक भारतीय खाताधारकों की वित्तीय जानकारी स्वत: भारत सरकार के साथ साझा करते हैं। इससे गोपनीयता का पर्दा लगभग समाप्त हो गया है और विदेशी खातों में अघोषित

धन रखना जोखिम भरा हो गया है।

दूसरा कारण काला धन और बेनामी संपत्ति के खिलाफ बने सख्त कानून हैं। विदेशी अघोषित संपत्ति पर भारी जुर्माने और जेल के प्रावधानों ने लोगों को सतर्क किया है। स्वैच्छिक घोषणा योजनाओं के बाद कई लोगों ने विदेशी धन को वैध रूप से घोषित कर कराधान की प्रक्रिया पूरी की। तीसरा कारण यह है कि स्विट्जरलैंड अब अकेला टैक्स हेवन नहीं रहा। सिंगापुर, दुबई, मॉरीशस, केमैन आइलैंड और डिजिटल परिसंपत्तियों जैसे नए विकल्प सामने आ चुके हैं। इसलिए धन का स्वरूप और उसका ठिकाना दोनों बदल रहे हैं।इस गिरावट को दो नजरियों से देखा जा सकता है। पहला, यह पारदर्शिता और वित्तीय अनुशासन की जीत है। पिछले एक दशक में काले धन के खिलाफ चलाए गए अभियान, नोटबंदी, जीएसटी, बेनामी कानून और अंतरराष्ट्रीय सूचना साझाकरण व्यवस्था ने अवैध धन पर दबाव बनाया है। इससे यह संदेश गया है कि अघोषित विदेशी संपत्ति अब सुरक्षित नहीं है।

दूसरा नजरिया यह है कि स्विस बैंकों से धन कम होना यह साबित नहीं करता कि काला धन समाप्त हो गया है। संभव है कि वह भारत में वैध निवेश के रूप में वापस आया हो, जो सकारात्मक संकेत है। लेकिन यह भी संभव है कि वह ऐसे देशों या डिजिटल माध्यमों में स्थानांतरित हो गया हो, जहां निगरानी अभी सीमित है। स्विस बैंकों की थर्ड पार्टी होल्डिंग का पूरा विवरण सार्वजनिक नहीं होता, इसलिए वास्तविक तस्वीर अभी भी पूरी तरह स्पष्ट नहीं है।

स्विट्जरलैंड ने भी समय के साथ अपनी भूमिका बदली है। कभी बैंकिंग गोपनीयता उसकी पहचान थी, लेकिन अब अंतरराष्ट्रीय दबाव और नियमों के कारण वह टैक्स पारदर्शिता का सहयोगी बन चुका है। आज वहां रखा गया अधिकांश वैध धन घोषित निवेश और वेल्थ मैनेजमेंट का हिस्सा है, न कि अनिवार्य रूप से काला धन।भारत के लिए यह उपलब्धि जरूर है, लेकिन आत्मसंतोष का कारण नहीं। काला धन केवल विदेशी बैंकों में नहीं, बल्कि रियल एस्टेट, सोना, नकद लेनदेन और शेल कंपनियों के रूप में भी मौजूद है। साथ ही क्रिप्टोकरेंसी और डिजिटल परिसंपत्तियां नए वित्तीय जोखिम बनकर उभर रही हैं। इसलिए घरेलू निगरानी और वैश्विक सहयोग दोनों को मजबूत करना होगा।

आम नागरिक के लिए भी यह विषय महत्वपूर्ण है, क्योंकि काला धन अंतत: टैक्स चोरी से जुड़ा होता है। जब कर संग्रह कम होता है तो शिक्षा, स्वास्थ्य और बुनियादी ढांचे पर असर पड़ता है। स्विस बैंकों में भारतीय जमा की 8 प्रतिशत गिरावट एक सकारात्मक संकेत अवश्य है, लेकिन इसे अंतिम सफलता नहीं माना जा सकता। काला धन पानी की तरह है, जिसे एक जगह रोका जाए तो वह दूसरी राह तलाश लेता है। इसलिए सुधारों की गति बनाए रखना ही सबसे बड़ी जरूरत है। सही दिशा में उठाया गया यह छोटा कदम भविष्य में अधिक पारदर्शी और ईमानदार अर्थव्यवस्था की मजबूत नींव बन सकता है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)